प्राचीन भारत में पशुपालन एवं धार्मिक स्वरूप

अमिताभ कुमार*

सभ्यता के आरम्भ से ही पशुपालन का महत्व कायम रहा है। पशुओं ने प्राचीन भारत के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक जीवन को कई प्रकार से प्रभावित किया।उसने भारतीयों के जीवन के विभिन्न पक्षों को जहाँ समृद्ध बनाया वहीं उन्होंने उनकी धार्मिक प्रवृत्तियों के निरूपण में भी अभिष्ट योगदान किया।

प्रागैतिहासिक युग में पशु मानव जीवन के अभिन्न अंग थे। आदिमानव ने आरण्य पशुओं को पालतु बनाया तो इस क्रम में उन्हें यह अनुभव हुआ कि इनमें भी अलौकिक शक्ति होती है। यह बात केवल पशु–पक्षियों में ही नहीं बल्कि सर्पो तथा इसी प्रकार के अन्य प्राणियों में भी होती है। आरण्य पशु इनके लिए संकट के भी कारण थे जैसे सिंह, व्याघ्र, हाथी एवं सर्प इत्यादि। अतः उनके क्रोध–निवारण के लिए भी उनलोंगे ने उनकी पूजा आरम्भ की। जंगलों के आधिक्य के कारण सर्पो से भी लोग संकट ग्रस्त थे क्योंकि इनके डंश के कारण उनकी मृत्यु हो जाया करती थी, अतः सर्प–पूजा का प्रचलन हुआ। चिरान्द के प्रागैतिहासिक स्थल से नागों की मिट्टी की अनेक मूर्तियाँ मिली है जितनी की अन्यत्र कहीं भी नहीं मिली है। एच0डी0 संकलिया का विचार है कि प्रागैतिहासिक मानव इनकी पूजा करता था।[1] सिन्धु घाटी के विभिन्न पुजा–स्थलों से प्राप्त मुद्राओं पर भी नागों की आकृतियाँ मिलती है, संभवतः जिनका उपयोग पूजा हेतु होता था। लोथल के बीन मृद्भाणु के टूकड़ों पर प्रत्येक पर दो सर्प बने है। मोहेंजोदड़ों की एक मुद्रा पर देवता के दोनों ओर एक–एक सर्प दिखाया गया है जो परवर्ती काल में बौद्धधर्म से संबंधित शिल्प में नागों के बद्ध को पूजने के अंकन की याद दिलाता है। वैदिक काल में भी नाग–पूजा का प्रचलन था।[2]

आर्यो ने भी स्थानीय प्रभावों के कारण नाग–पूजा को अपने लोक–धर्म में स्थान दिया। ब्राह्मण ग्रंथों में नाग को आर्य–देवताओं का विरोधी माना गया है। महाभारत में यह कहा गया है कि अर्जुन ने पाण्डव वन को जला दिया जहाँ नाग रहते थे। जन्मेजय ने भी नागों के नाश के लिए तक्षशिला में यज्ञ किया था। इस ग्रन्थ में नाग–मंदिरों का उल्लेख किया गया है जो राजगृह[3] में थे। मगध बहुत वर्षो तक नाग–पूजा का केन्द्र था। जातक–आरव्यानों में नाग–पूजा के अनेक उल्लेख मिलते हैं। बुद्ध के समय में यह लोकप्रिय धर्म था। बुद्ध ने भिक्षुओ को भी नागों का सम्मान करने का उपदेश दिया ताकि वे सर्प–दंश से बच सकें। अभी भी भारत में खासकर बिहार में नाग–पूजा का प्रचलन है और श्रावण की शुक्ल–पंचमी को इनकी पूजा विशेष रूप से होती है। कौटिल्य[4] ने भी नागों की मूर्तियों का उल्लेख किया है और उनके मंदिरों का भी जिनमें उनकी पूजा होती थी। बौद्ध ग्रंथों[5] से विदित होता है कि सर्पो की पूजा दूध,चावल, मछली, मॉस, सुरा एवं धान के लावे से की जाती थी। गृह सूत्रों[6] में भी उनकी पूजा का विधान है। सॉची की कला में भी हमें नागों की आकृतियॉ पत्थरों पर उभरी हुई मिलती है जिनमें नाग पूजा के दृश्य दिखाएँ गये हैं।

पशु पूजा के रूप में वृषभ की भी पूजा प्राचीन काल में प्रचलित थीं। कृषि–प्रधान संस्कृति होने के कारण भारतीयों ने बैलों के प्रति आभार पकट करने के लिए उनकी पूजा आरम्भ की। ऐतिहासिक काल में वास्तविक पशुओं में वैल सर्वाधिक धार्मिक महत्व का पशु रहा है। मध्य एवं पूर्व मध्य की संस्कृतियों में इसे सौम्य और रौद्र दोनों ही रूपों में पूजनीय माना जाता था। उसे रक्षक और ऑधी का दैत्य माना जाता था। हड़प्पा संस्कृति में बैल 'शिव–पशुपति' के प्राग रूप वाले देवता से संबंधित था, यह निश्चित ज्ञात नहीं है।[7] लेकिन सिन्धु घाटी की मुद्राओं पर कई प्रकार के वृषभों की आकृतियॉ मिलती हैं। संभवतः इनकी पूजा वहॉ होती थी। वेदों में भी वृषभ को धर्म का स्वरूप माना है। वैसे परवर्ती काल में वैल का शैव धर्म के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कभी–कभी तो शिव की ही वृषभ के रूप में कल्पना की गयी। शैव–धर्म के साथ वृषभ का विशेष संबंध है, क्योंकि यह शिव का वाहन माना जाता है। प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में भी वृषभ–पूजा के उल्लेख मिलते हैं जिनका प्रचलन लोक धर्म में था। वृषभ का शिव के साथ संबंध सिक्कों पर भी देखने को आता है जैसा कि सर्व प्रथम कुषाण सिक्कों पर शिव को उनके वाहन वृषभ के साथ देखते हैं।[8]

गाय की भी पूजा प्राचीन काल से होती आ रही है। गाय को माता की संज्ञा दी गई है, क्योंकि यह जीवन धारण करने की सामग्रियॉ थी। खेती करने एवं भार ढ़ोने योग्य बैल भी इनमे उत्पन्न होते थे। इन पशुओं के चर्म, मॉस एवं अस्थियॉ भी उपयोगी थी। इसलिए लोगों की सूक्ष्म धार्मिक भावनाओं के कारण इनकी पूजा भी आरम्भ हुई। परन्तु सिन्धु–घाटी में यह पूजा की आस्पद नहीं थीं। सर्वप्रथम ऋग्वेद में गायों के प्रति सम्मान का विवरण मिलता है, जिसमें उनको अध नया कहा गया है। यह लक्ष्मी का प्रतिरूप भी मानी जाती थी और हिन्दू धर्म में इसका इतना महत्वपूर्ण धार्मिक स्थान बन गया कि इसकी सेवा मुक्ति का मार्ग समझी जाने लगी। रघुवंश में वर्णित है कि संतान–लाभ के लिए रानी सुदश्रणा नन्दनी नामक गाय की पूजा करती थी। पौराणिक राजा दिलीप अपनी पत्नी के साथ जंगल में गाय को देखने जाते थे।[9] उपरोक्त उदाहरणों से सावित होता है

***नेट, यूजीसी शोधार्थी इतिहास विभाग पटना विश्वविद्यालय, पटना**

कि राजा गाय को धार्मिक दृष्टि से देखता था एवं गोदान में मोक्ष प्राप्ति की सुखानुभूति करता था[10] गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त का नाम गोदान करने में बहुत प्रसिद्ध था[11] गो हत्सा को ब्राह्मण हत्या के समान समझा जाता था।

आज के हिन्दू धर्म में कुछ पशु–पक्षी देव–वाहन के रूप में ख्यात है, जैसे भैंसा यम का, बैल शिव का, गरूड़ विष्णु का, हाथी इन्द्र का, चूहा गणेश का, मकर गंगा का, मयूर कार्त्तिकेय का, अज अग्नि का, उल्लूक लक्ष्मी का और हंस सरस्वती का जिसकी पूजा आज भी लोग बड़ी ही श्रद्धा–भक्ति भाव से करते हैं। लेलियोडोरस के विदिशा स्तम्भ पर गरूड़ की आकृति थी जो विष्णु के सम्मान में खड़ा किया गया था। प्राचीन प्रथाओं के कारण ही बौद्ध धर्म में पशुओं को बुद्ध के जीवन की कई घटनाओं का प्रतीक माना गया और बाद में उनकी पूजा भी होने लगी। चैरयों और स्तूपों पर उनकी आकृतियॉ उभारी जाने लगी, जैसे–हाथी,अश्व एवं हिरण क्रमशः उनके जन्म, महाभिनिस्कमण एवं सारनाथ में धर्म–चक्र प्रवर्तन के प्रतीक बन गया जिसकी मूर्तियों को सारनाथ के स्तम्भ पर अशोक ने स्थापित करवाया। इस तरह पशुओं के प्रति दयालुता में वृद्धि का एक बड़ाकारण वैष्णव, बौद्ध और जैन धर्मो के द्वारा प्रतिपादित अहिंसा सिद्धान्त था।[12]

फिर भी यज्ञों में पशुओं की बलि चढ़ानेका उल्लेख विभिन्न ग्रंथों में मिलता है। प्राचीन मानव विभिन्न कष्टों के निवारण हेतु, रोगों को दूर करने के लिए तथा देवताओं को प्रसन्न करने के लिए, पशुओं की बलि देता था। सिन्धु घाटी की मुद्राओं पर कई पशुओं की बलि दी जाने के दृश्य अंकित है। कालीबंगा में भी पशु बलि के साक्ष्य मिले हैं। हड़प्पा में बैल, भेड़ आदि पशुओं की हड्डियों का ढ़ेर मिला है जो सामूहिक पशुबलि दिये जाने का घोतक लगा है।[13] इससे विदित होता है कि सैन्धव लोग पशु–बलि करते थे ताकि देवता प्रसन्न होकर उनकी सुख–समृद्धि करें। यज्ञों या पूजा में वध किये गये पशुओं के माँस को पवित्र माना ाजाता था और प्रसाद के रूप में लोग उन्हें ग्रहण करते थें। ऋग्वेद में भी देवताओं के सम्मान में पशुओं की बलि का उल्लेख मिलते हैं। ऐसे पशुओं में वृषभ, महिष, अज और मेष उल्लेखनीय है। यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रंथों में, जिनमें यज्ञों को करने की विधि ायाँ विस्तृत रूप से बतलायी गई है। विभिन्न देवताओं के लिए बलि पशुओं के नामों के उल्लेख मिलते हैं। वाजसनेयी संहिता में ऐसे विभिन्न पशु–पक्षियों के उल्लेख है जिनकी बलि विभिन्न यज्ञों में देवताओं को दी जाती थी। हंस की बलि वायु और सोम को, कपोत की बलि यम के लिए एवं श्वेत बक की बलिवसंत–ऋतु के लिए दी जाती थी।[14] मयुर की बलि विभिन्न यज्ञों में देवताओं को दी जाती थी तथा सुपर्ण और शुक्र की बलि क्रमशः विष्णु और सरस्वती के लिए[15] तीतर का बध सर्प के लिए किया जाता था।[16] ककर और विकर, मदगुंजलक, चक्रवाक, कशा, परूष्ण,

दविध, कालका एवं गोमृग की बलि क्रमशः शीतऋतु, मित्र, वरूण, सोमाग्नि, अनिल, वायु, वनस्पति तथा वायु को दी जाती थी पर हिरण की बलि विभिन्न देवताओं के लिए दी जाती थी।[17] अज और नकुल की बलि पूषण के लिए की जाती थी।[18] इसका उल्लेख जातक आख्याना तथा विभिन्न बौद्ध–निकायों में मिलता है, जिसमें स्पष्ट होता है कि किस तरह ब्राह्मण–पुरोहित धर्म के नाम पर निर्दोष पशुओं का निर्दयतापूर्वक वध करते थें। महात्मा बुद्ध ने इसका कड़ा विरोध करते हुए कहा कि मूक–पशुओं की बलि यज्ञों में देने से कोई लाभ नहीं होता है। अतः यह पाप कर्म है। इसे उन्होंने निषिद्ध किया।

इस तरह यज्ञों में पशु–बलि का प्रचलन इतना अधिक था कि अशोक को उसके निषेध के लिए राजाज्ञा निकलवानी पड़ी और अपने अभिलेखों में उसने बार–बार प्राणियों के प्रति अहिंसा की भावना रखने का उपदेश दिया है। संभव है, उसका प्रभाव जनमानस पर पड़ा हो। अशोक की राजाज्ञाओं और महाभारत में पशु–बलि की निषेध संबंधी बातों के होते हुए भी अत्यन्त प्राचीन काल से चली आने वाली यह प्रथा मौर्य–युग के समाप्त होते ही पुनः आरम्भ हो गई। महाभारत में अनेक वैदिक यज्ञों के उल्लेख मिलते हैं जिनमें पशु–बलि का विधान किया गया है। गुप्तकाल में भी यह प्रथा काफी फली–फूली।

ऐसा इसलिए संभव हुआ कि लोगों में यह धारणा बन बैठी थी कि श्राद्ध कर्म यानी पितृ–पूजा में पशुओं का मांस अर्पित करना फलदायी होता है। वैसदिक ग्रंथों एवं अन्य शास्त्रों में यह कहा गया है कि पितरों को विभिन्न पशुओं का मांस श्राद्ध कर्म में अर्पित किया जाना अनिवार्य है। मनुस्मृति में विभिन्न पशु–पक्षियों के नाम गिनाये ागये है जिनका मांस पितरों को अर्पित किया जाता था। महाभारत में युधिष्ठिर–भीष्म–संवाद में श्राद्ध में पितरों को अर्पित की जाने वाली विभिन्न सामग्रियों में विभिन्न पशुओं के मांस का भी उल्लेख है। उसमें कहा गया है कि पितरों को मत्स्य अर्पित करने से उसकी दो मांसों तक तृप्ति होती है। भेड़ के मांस से तीन महीने तक, शश के मांस से चार महीने तक, अज के मांस से पाँच महीनों तक, सूकर तथा छोटे पक्षियों केमांस से क्रमशः आठ और नौ महीनों तक, गौओं के मांस से दस माह तक महिष के मांस से ग्यारह मांसों तक,गव्य के पूरे एक वर्ष एवं वाध्रीण के मांस से वारह वर्षों तक तृप्ति होती है, परन्तु गेंडा के मांस से वे अनन्त काल तक तृप्त होते हैं।[19] सोमदेव के अनुसार पितृलोक मत्सय, हिरण, गौरम, शाकुनि, छाग, पार्ष, रण, रोख, वाराह, महिष, शश, कुर्म, गव्यज, पायस तथा वाघीर्ण माँस से क्रमशः दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह तथा बरह वर्ष तक के लिए तृप्त हो जाते हैं।[20] पितरों के तृप्ति के लिए माँस का उपयोग श्राद्ध में किया जाता था।[21]

इसके अतिरिक्त पशुओं को दान देने की चर्चा भी विभिन्न ग्रन्थों में मिलती है। यजुष् संहिताओं एवं ब्राहम्ण ग्रंथों में यह बतलाया गया है कि यज्ञों में विभिन्न कर्मो को करने वाले पुरोधितों को किस काम के लिए कौन सा पशु दान में दिया जाना चाहिए। दान देना पुण्य का काम था, परन्तु इसके साथ परिश्रम और धन के वितरण की भी भावना संयुक्त थी। कभी–कभी पुरोहित यजमानों का शोषण भी करते थे, अतः उसकी निन्दा ब्राह्मण ग्रन्थें में की गई है। महाभारत में पशुओं को विभिन्न धार्मिक कार्यो के अवसर पर दान देने की उल्लेख है, जिसमें गायों, बैलों, अश्वों, अश्वतरों, अज एवं मेषों के दान का उल्लेख है। इस संबंध में कहा गया है कि दान की सभी वस्तुओं में गौए श्रेष्ठ हैं। ये सभी प्राणियों के मस्तक पर स्थित है। जो व्यक्ति दूध देने वाली सुलक्षण कपिला गाय का दान करता है वह ब्रह्मलोक में सम्मानित होता है। जो अधिक दूध देने वाली बछड़ों सहित विभिन्न रंगों की गायों को दान में देता है वह अनेक शुभ लोकों में जाता है। इसी सन्दर्भ मूं यह भी कहा गया है कि जो व्यक्ति विशाल पृष्ठभाग वाले बैलों को अलंकृत कर दान करता है वह गन्धर्व लोक में जाता है जो व्यक्ति गाड़ी का बोझ ढ़ोने वाले बैलों कोदान करता है वह प्रजापति के लोक में जाता है। गाय और बैल दोनों का दाता उतने वर्षो तक स्वर्गलोक में सम्मानपूर्वक रहता है जितने उसके शरीर में रोएँ होते हैं। पुण्य समाप्त होने के बाद वह पृथ्वीलोक में आता है तो समृद्ध घरों में उसका जन्म होता है।[22] जातक ग्रंथों में भी लोभी ब्राह्मणों के कई दृष्टान्त मिलते हैं। बुद्ध ने यज्ञों एवं ब्राह्मणों का विरोध किया। कौटिल्य ने राजा को परामर्श दिया है कि उसे श्रेत्रिय ब्रह्मणों, अन्य विद्वानों, कलाकारों, वैश्यों और पुरोहितों को भी भूमि, अन्न के साथ–साथ पशुओं को दान में देना चाहिए।

पशुओं को दान में देने के लिए पशुपालन अनिवार्य हो गया था। परन्तु रोमिला थापर के अनुसार इस युग में भूमिदान की प्रथा के कारण पशुओं का दान देने में कमी आयी। धीरे–धीरे दान की प्रक्रिया प्रतीक मात्र रह गयी।[23] लेकिन थापर के इस विचार को स्वीकार नहीं किया जा सकता। गौतम[24] याज्ञवल्व्य[25] आदि की रचनाओं में जिस प्रकार वृषभ, गौ, महिष इत्यादि के दान और उनके महत्व को बताया गया है, उससे परिलक्षित होता है कि पशुदान का सामाजिक महत्व बरकरार रहा। पशुधन की रक्षा धर्म–कर्म की दृष्टि से पुनीत कार्य था।

निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि पशुओं ने भारतीय जन मानस के धार्मिक प्रवृत्तियों के निरूपण में महत्तर योगदान दिया।

सन्दर्भ

1. एच0डी0संकलिया, द प्रीहिस्ट्री–प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इंडिया एण्ड पाकिस्तान, द्वितीय संस्करण, डेक्कन कॉलेज रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना, 1974 पृ0 276

2. किरण कुमार थपल्याल एवं संकर प्रसाद शुल्क, सिन्धु सभ्यता, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनउ, 1992, पृ0 165
3. महाभारत सभापर्व 21/9
4. कौटिल्य, अर्थशास्त्र 5/2
5. जातक, भाग 1 पृ0 498
6. सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, भाग–29 पृ0 128–129 और 328 से 330
7. किरण कुमार थपल्याल एवं संकर प्रसाद शुल्क, पूर्वोद्धत, पृ0 164
8. परमेश्वरी लाल गुप्ता, भारत के पूर्व कालिक सिक्के, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006
9. कुमार अमरेन्द्र, गुप्तकालीन भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था लगभग 300 ई0–550 ई0, पटना, 2001 पृ0 117
10. वृहसंहिता, 12, 15–16
11. फ्लीट, 8.1.25
12. कुमार अमरेन्द्र, पूर्वोद्धत, पृ0 117
13. किरण कुमार थपल्याल एवं अन्य, पूर्वोद्धक, पृ0 165
14. ऋग्वेद, 10–165
15. वजसनेयी संहिता, 24–25
16. वही, 7, 24, 36
17. वही, 24, 27
18. महाभारत, अनुशासन पर्व, 8, 1–11
19. यशस्तिलक, उत्तरार्द्ध, पृ0 127–28
20. कुमार अमरेन्द्र, पूर्वोद्धक, पृ0 117
21. महाभारत, अनुशासन पर्व, 78, 1–27
22. रोमिला थापरन, प्राचीन भारत, नई दिल्ली, 1997, पृ0 96–97
23. नारद स्मृति, सर्ग 6.2
24. याज्ञवल्व्य स्मृति, सर्क 22, 27, 30
25. कुमार अमरेन्द्र, पूर्वोद्धत, पृ0–117